टूटती सांकले

अंक - 13 जुलाई - अगस्त, 2009 सहयोग राशि 3/- रुपये

संपादकीय

लालगढ़ लड़ाई ज़ारी है

पिछले कुछ दिनों से पश्चिम बंगाल का लालगढ़ पूरे देश के खबरों की सुर्ख़ियों में है. सालों साल से शोषित हो रहे आदिवासियों ने अपने हक तथा राज्य द्वारा हो रहे ज़ुल्म के खिलाफ़ जंग छेड़ दी है. पिछले साल दो नवंबर, 2008 के पहले तक यह इलाका और इलाकों की तरह ही था.

पिछले साल दो नवंबर को पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य की गाड़ी ज़िंदल स्टील प्लांट का शिलान्यास कर पश्चिमी मेदिनीपुर के लालगढ़ के सालबनी इलाके से गुजर रही थी. उसी समय मुख्यमंत्री की गाड़ी ने एक बारूदी सुरंग का सामना किया. मुख्यमंत्री की जान तो बच गयी पर उसी घटना के तुरंत बाद सत्ता के नशे में चूर पश्चिम बंगाल की सीपीएम सरकार ने वहां के गरीब व निर्दोष लोगों पर नये सिरे से दमन चक्र चलाना शुरू कर दिया. इसी अत्याचार के सिलसिले में एक महिला की आंखें फोड़ दी गयीं. पुलिस ने दमन की अपनी सारी सीमाएं लांघ दीं, जब उन लोगों ने आठवीं से दसवी कक्षाओं में पढ़नेवाले तीन स्कूली छात्रों को माओवादी करार देते हुए हिरासत में ले लिया. इस घटना से लालगढ़ के आदिवासी भड़क उठे तथा गांवों के पांच हज़ार पुरुषों और महिलाओं ने छह नवंबर को लालगढ़ पुलिस थाने को घेर लिया तथा उन तीनों छात्रों को जल्द से जल्द रिहा करने की मांग की. बिगड़ते हालात को देखते हुए पुलिस ने गांववालों को भ्रमित करने का प्रयास किया, पर पुलिस की हर चालाकी नाकामयाब रही. उस दिन पूरी रात आदिवासियों ने थाना घेरे रखा. अगले दिन सुबह ही उन तीनों छात्रों को बिना किसी शर्त के पुलिस हिरासत से रिहा कर दिया गया.

इस पूरी घटना ने आदिवासियों के मन में पुलिस के प्रति अविश्वास का भाव और भी तीव्र गति से बढ़ा दिया. पुलिस द्वारा अत्याचार लालगढ़ के आदिवासियों के लिए कोई नयी घटना नहीं थी. सिर्फ़ पुलिस कहना गलत होगा, पुलिस तथा सीपीएम की गुंडावाहिनी दोनों के तालमेल से 1998 से यहां के आदिवासी पीड़ित होते आ रहे हैं. माओवादियों की तलाशी के नाम पर बेकसूर गांववासियों पर अत्याचार, महिलाओं के साथ बलात्कार, घर की तोड़फोड़ इत्यादि चलते रहते थे.

33 साल से राज करनेवाली सीपीएम सरकार ने विकास के नाम पर सिर्फ़ एक पक्की सड़क बनवायी, जिस रास्ते से पुलिस व सीपीएम के गुंडों की गुंडों की गाड़ियों का आना–जाना आसान हो सके. यहां के गांवों में न ही खाने के लिए अनाज है, न हैं पहनने के लिए कपड़े, स्कूल–अस्पताल तो दूर की बात है. सबसे दरिंदगी की बात यह है कि जिन गांवों में सीपीएम के स्थानीय नेताओं ने अपने–अपने आलीशान बंगले खड़े किये हुए हैं. जहां गांवों में बिजली का नामो–निशान नहीं है, वहां सीपीएम के नेताओं के कमरे वातानुकूलित हैं. अपने तथा पूंजीपतियों के फ़ायदे के लिए सेज़ के नाम पर गरीब आदिवासियों से पांच हज़ार एकड़ ज़मीन औने–पौने दामों पर ज़िंदल स्टील प्लांट को दे दी गयी. आदिवासियों ने शासकों के इस घिनौने रवैये के खिलाफ़ *पुलिस संत्रास विरोधी जनसाधारणेर कमेटी* का गठन किया और यह एलान किया कि वे लोग पुलिसिया ज़ुल्म के खिलाफ़ तब तक लड़ते रहेंगे जब तक कि उसका खात्मा न हो जाये. इस कमेटी के नेता छत्रधर महतो का कहना है कि वे लोग अपनी जान कुरबान कर देंगे, पर पुलिस तथा सीपीएम के गुंडों का अत्याचार अब और नहीं सहेंगे. उनका कहना है कि गांववासियों की यह लड़ाई पूरी तरह जायज़ है. सीपीएम सरकार सालों से आदिवासियों को अनदेखा करती आ रही है. चीटियां खाकर ये गांववासी गुजारा करते आ रहे हैं. ये गांव गरीबी की पूरी सीमाएं पार कर चुके हैं. ऐसे में गांव की जनता ने तय किया है कि अपनी स्थिति को वह खुद ही सुधारेगी. बीते आठ महीनों के दौरान लोगों ने खुद नल तथा प्राथमिक स्कूलों का निर्माण किया व अपने बलबूते पर अस्थायी अस्पताल चला रहे हैं. हैरत की बात यह है कि जो काम सीपीएम सरकार के राज्य में पैसों की किल्लत के कारण बंद पड़ा हुआ था, वह गांववासियों ने अपने बलबूते पर कर डाला. अपने जायज़ हक को हासिल करने के लिए लड़नेवाले हर गांववासी को सीपीएम सरकार ने माओवादी करार दिया. गांववासियों को कुचलने के लिए तथाकथित गरीबों की सरकार ने फटाफट बीएसएफ़ की छह कंपनियों तथा चार कोबरावाहिनी को गांवों में तैनात कर दिया. गांववासियों ने अभी तक पूरी शांति बरकरार रखते हुए लड़ाई ज़ारी रखी. पुलिस तथा बीएसएफवाहिनी को रोकने के लिए जंगल काट कर जगह–जगह रास्ता रोक दिया.

इस आंदोलन की सबसे बड़ी खासियत महिलाओं एवं पुरुषों की समान भागीदारी है. अपनी ज़मीन अपना घर अपने गांव को पाने के लिए महिलाएं तथा पुरुष तीर–धनुष हाथ में लिये अपनी रक्षा कर रहे हैं. हर गांव में कमेटी का गठन किया गया है, जिसमें महिला–पुरुष की समान भागीदारी है. ये लोग खुद को गरीबों का मसीहा कहनेवाली नकाबपोश सीपीएम सरकार के खिलाफ़ थे. पिछड़े हुए आदिवासी जोर–शोर से लड़ाई ज़ारी रखे हुए हैं.

लालगढ़ में आदिवासी जनता के इस संघर्ष को खून की नदी में डुबो देने के लिए हज़ारों की संख्या में अर्धसैनिक बल अपना अभियान चला रहे हैं. इस खूनी अभियान का अंजाम जो भी हो लालगढ़ की जनता का अपनी ज़मीन इज्ज़त एवं जनवाद के लिए ज़ारी जीवन–मरण संघर्ष पूरे देश में हज़ारों लालगढ़ को जन्म देगा.

संघर्षशील महिलाओं की गाथा

हमारे देश में ऐसी कई बहादुर महिलाएं पैदा हुई हैं, जिन्होंने नवजनवादी क्रांति की राह पर चलते हुए अपने प्राणों की की आहूति दी है. जिन्होंने शोषण और लूट पर टिकी इस व्यवस्था को चुनौती दी. एक शोषणविहीन समाज जिनका सपना था. शासक वर्ग के लिए ये क्रांतिकारी महिलाएं हमेशा खतरा बनी रहीं. स्वर्णलता इन्हीं में से एक नाम है.

स्वर्णलता

नलगोंडा ज़िले के मोत्कूर तालुके में दुपल्ली गांव की रहनेवाली स्वर्णलता मध्यवर्गीय परिवार से ताल्लुक रखती थीं. इकलौती बेटी थीं वह. जब वे इंटर में पढ़ती थीं, तब वे रेडिकल छात्र आंदोलन की ओर आकर्षित हुईं. फिर हैदराबाद पालिटेक्निक कालेज में एडमिशन लेने के साथ–साथ रेडिकल छात्र आंदोलन की अगली पंक्ति में खड़ी हुईं. महिलाओं के लिए मुशीराबाद में स्थित समाज कल्याण छात्रावास में रहते हुए छात्राओं से उनकी समस्याओं पर लगातार बातचीत करती थीं. रेडिकल छात्र संघ, रेडिकल युवजन संघ के जहां भी सभा समारोह होते, जुलूस निकलते, स्वर्णलता हमेशा आगे रहतीं. ऊंचीं, बुलंद और जोशीली आवाज़ में नारे लगातीं. 1984 में एक मेडिकल छात्र की गिरफ़्तारी होने पर स्वर्णलता स्थिति को जानने–समझने के लिए उससे मुलाकात करने गयीं. लेकिन वहां पुलिस ने उन्हें हिरासत में ले लिया और कई सारे सवाल पूछने लगे. लेकिन स्वर्णलता निडरतापूर्वक डटी रहीं. 1985 की गरमी की छुट्टियों में किसानों के बीच जाने के अभियान में स्वर्णलता की भागीदारी काफी जोर–शोर से रही. इसके बाद वे शहर में छात्र आंदोलन गठित करने के लिए पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में आगे आयीं. अखिल भारतीय क्रांतिकारी छात्र संघ (एआइआरएसएफ़) की विशाल सभाओं के आयोजन के

शेष पेज दो पर

दिनों में तीन सौ कार्यकर्ताओं के साथ एनटीआर के निवास पर धरना दिया. स्वर्णा इन सबकी नेता थीं और लाठी चार्ज में बुरी तरह घायल होकर पुलिस द्वारा गिरफ़्तार हुईं. पुलिस की निगरानी की परवाह किये बिना औद्योगिक क्षेत्रों के मज़दूरों के बीच में इन्होंने काम करना शुरू किया. मज़दूर बस्ती के परिवारों से स्वर्णा काफी घुल–मिल गयी थीं. वहां शहर में सरकार का शिकंजा कसता चला जा रहा था. इसलिए स्वर्णा 1985 के दिसंबर में आंध्र के आदिवासी इलाके में काम करने चली गयीं. और आदिवासी आंदोलनों में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेना शुरू किया. आदिवासियों के बीच रहते हुए उनकी भाषा–संस्कृति को स्वर्णा ने अपनाया. यहां इनका स्वास्थ्य भी जवाब दे रहा था. इसके बावजूद उन्होंने हिम्मत नहीं हारी. बल्कि उनका मनोबल ऊंचा ही रहा. यहां स्वर्णा तांडव दल की सदस्या थीं. 26 अप्रैल, 1987 को इस दल पर अचानक पुलिस का हमला हुआ और दलनायक शहीद हुए. स्वर्णा पुलिस का सामना करते हुए ज़ख्मी हुईं और उन्हें पुलिस ने उन्हें अपने घेरे में ले लिया. पुलिस ने स्वर्णा को भयंकर यातनाएं दीं और अत्यंत क्रूरतापूर्वक उन्हें मार दिया. और तो और उनका मृत शरीर भी गायब करवा दिया. इससे ज्यादा पुलिस की निर्ममता की मिसाल और क्या हो सकती है? संघर्ष की राह में शहीद हुई स्वर्णा का नाम आज भी अमिट है. *(स्रोत–अमर वीर नारियों की जीवनी)*

कैथर कला की औरतें

कविता

तीज–व्रत रखतीं धान–पिसान करती थीं
गरीब की बीबी
गांव भर की भाभी होती थीं
कैथर कला की औरतें

गाली–मार खून पीकर सहती थीं
काला अच्छर
भैंस बराबर समझती थीं
लाल पगड़ी घर में छिप जाती थीं
चूड़ियां पहनती थीं
ओंठ सीकर रहती थीं
कैथर कला की औरतें

जुल्म बढ़ रहा था
गरीब–गुरबा एकजुट हो रहे थे
बगावत की लहर आ रही थी
इसी बीच एक दिन
नक्सलियों की धर–पकड़ आयी
पुलिस से भिड़ गयीं
कैथर कला की औरतें
अरे ! क्या हुआ? क्या हुआ?
इतनी सीधी थीं, गऊ जैसी
इस कदर अबला थीं
कैसे बंदूकें छीन लीं
पुलिस को भगा दिया कैसे?
क्या से क्या हो गयीं
कैथर कला की औरतें?
यह तो बगावत है
राम–राम, घोर कलियुग आ गया
औरत और लड़ाई?
उसी देश में जहां भरी सभा में
द्रौपदी का चीर खींच लिया गया
सारे महारथी चुप रहे
उसी देश में
मर्द की शान के खिलाफ़ यह ज़ुर्रत?

खैर यह तो अभी–अभी
कैथर कला में छोटा–सा महाभारत
लड़ा गया और जिसमें
गरीब मर्दों के कंधे–से–कंधा
मिला कर
लड़ी थीं कैथर कला की औरतें
इसे याद रखें
वे जो इतिहास को बदलना चाहते हैं
और वे भी जो इसे पीछे मोड़ना चाहते हैं
इसे याद रखें
क्योंकि आनेवाले समय में
जब किसी पर ज़ोर–ज़बर्दस्ती नहीं
की जा सकेगी
और जब सब लोग आज़ाद होंगे
और खुशहाल
तब सम्मानित
किया जायेगा जिन्हें
स्वतंत्रता की ओर से
उनकी पहली कतार में
होंगी
कैथर कला की औरतें

गोरख पांडेय

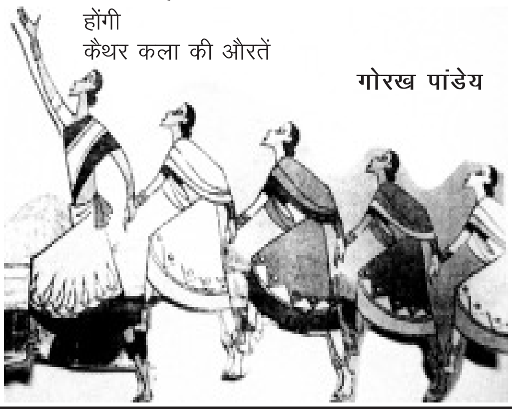

वादों की कश्ती में फिर से सवार यूपीए सरकार

हमारे देश में पंद्रहवीं लोकसभा में कांग्रेस की अगुवाई में यूपीए गंठबंधन भले जी आसानी से सरकार बना ले, पर यह भी सच है कि कोई भी पार्टी स्पष्ट रूप से बहुमत हासिल नहीं पायी है. कहने को तो इस चुनाव में कांग्रेस का वर्चस्व रहा, पर गौर से देखा जाये, तो कांग्रेस को इस बार कुल 29 प्रतिशत ही वोट मिल पाया. इस बार कुल चुनावी प्रतिशत 50 (सरकारी आकलन के तहत) रहा. पूरे चुनावी प्रकरण में पंद्रह सौ करोड़ इस्तेमाल होने के बावजूद लोगों के अंदर चुनाव को लेकर कोई खास उत्साह पैदा नहीं हुआ. इस कारण से वोटिंग रेट में कुछ खास बढ़ोत्तरी नहीं हुई. दरअसल आम आदमी का हर चुनावी पार्टियों से मोहभंग हो चुका है.

2004–09 अर्थात चौदहवें लोकसभा चुनाव में यूपीए सरकार ने सत्ता में आने के बाद बहुत सारे वादे किये थे, जैसे कि किसानों की हालत में सुधार लाना, मज़दूरों को उसकी सही मज़दूरी दिलवाना, आम आदमी को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना वगैरह–वगैरह. लेकिन यूपीए सरकार इन वादों को पूरा करने में पूरी तरह असमर्थ रही. 2009 के विश्वबैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 46 करोड़ 56 लाख लोग गरीबी सीमा से नीचे हैं, जो कि पूरे विश्व के गरीबों की जनसंख्या की एक तिहाई है. आय में बढ़ती हुई असमानता को देखने से यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि हमारे देश में गरीबों तथा अमीरों के बीच विशाल खाई बढ़ती ही जा रही है. 75 प्रतिशत गरीबों के पास अस्थायी रूप से काम नहीं है. ये लोग ज्यादातर दिहाड़ी मज़दूर स्वरोजगार एवं भूमिहीन किसान हैं. सरकार हमेशा अपने आप को आम आदमी का मसीहा कहती है, लेकिन आंकड़ों से पता चलता है कि सरकार का यह कहना कितना बेबुनियाद है. देश के चालीस करोड़ लोगों की रोज़ाना आय मात्र बारह रुपया प्रतिदिन है. इन लोगों को न ही नौकरी की सुरक्षा है, न ही सामाजिक सुरक्षा. एक तरफ़ रेखा के नीचे के तबके के लोग प्रतिदिन बारह रुपया आय कर अपना दिन गुजार रहे हैं, तो दूसरी तरफ़ देश के मंत्रियों, सांसदों के पास करोड़ों करोड़ की संपत्ति है.

542 सांसदों में से इस बार तीन सौ करोड़पति हैं. आज़ादी के 62 साल बाद भी आम आदमी जीने के बुनियादी साधन (रहने के लिए मकान,खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए कपड़ा तथा पीने के लिए साफ़ पानी, बिजली तो दूर की बात है) जुटाने में मोहताज है. और इसी गरीब देश की सेवा करनेवाले शासकों के पास आखिर इतनी संपत्ति कहां से आती है. कहने को सरकार ने किसानों की हालत सुधारने की बात की थी. 2004–09 में अनुमानतः एक लाख 25 हज़ार किसानों ने आत्महत्या की. महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, गुजरात हर जगह कर्ज़ से परेशान किसानों ने अपनी जान दी. केवल एक महीने में ही एक हज़ार किसानों ने आत्महत्या की. इस वैश्वीकरण के दौर में जबकि हमारे देश की अर्थव्यवस्था पश्चिमी देशों की अर्थव्यवस्था पर निर्भर हो चुकी है ऐसे में पूरे विश्व के विकसित देशों की अर्थव्यवस्था रेत के महल की तरह भरभरा कर गिरने लगी, तो हमारे देश में इसका असर होना स्वाभाविक था. लेकिन ऐसे समय में भी वित्त मंत्री तथा प्रधानमंत्री समेत समस्त नेतागण एक सुर में कह रहे हैं कि हमारे यहां मंदी का कोई प्रभाव नहीं. दरअसल ये नेतागण अपनी–अपनी तिजोरी की असलियत बखान कर रहे थे. सच ये है कि उसी समय निर्यात आधारित जितने उद्योग हैं, उससे जुड़े हुए चार लाख अस्थायी मज़दूरों को नौकरियां गंवानी पड़ीं, चूंकि वे लोग अस्थायी मज़दूर नहीं थे, इन लोगों का सही आंकड़ा मीडिया में नहीं आ पाया. आर्थिक सुधार के नाम पर हमारे देश का शासक वर्ग हमारे देश को साम्राज्यवादी देशों के हाथ धीरे–धीरे सौंपता जा रहा है. आम आदमियों के नाम पर लिया जा रहा विदेशी कर्ज अंततः नेताओं और पूंजीपतियों की तिजोरी में भी पहुंच रहा है और इस विदेशी कर्ज की भरपायी का ज़िम्मा हमारी पहले से ही फटी जेब पर आ रहा है. *इंडिया इज़ शाइनिंग , जय हो* का नारा लगाते हुए शासक वर्ग बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा पूंजीपतियों के लिए रास्ता खोलता जा रहा है.

भारत एक सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, यह कह कर शासक वर्ग जनता को गुमराह कर रहा है. जनता को आश्वासन का झुनझुना पकड़ा कर लुटेरों के लिए सभी तरह की सहूलियतें मुहैया कराना शासक वर्ग की नीति है. मनमोहन सरकार भी यही परंपरा निभा रही है.

पूनम

मेरी बात

मेरा नाम जानकी है. जब मैं चौदह साल की थी, मेरी शादी हो गयी. मेरे पति को उस वक्त 150 रुपये मिलते थे. तब हम घर थोड़ा बहुत ठीक से चला लेते थे. जब इंदिरा गांधी की हत्या हुई थी, तब उनकी नौकरी छूट गयी. हमने बड़े दुख से दिन बिताये. मेरे बच्चे ब छोटे–छोटे थे, दूध के बजाय पाने में चीनी घोल कर दिलाना पड़ता था. खाने को खाना बहुत मुश्किल से मिल पाता था. जैसे–तैसे दिन गुजार कर हम झिलमिल की तरफ़ आ पहुंचे. तब हम लोगों ने टाटपट्टी–पन्नी को मिला कर एक झुग्गी बना ली. झुग्गी में मेरी जान–पहचान होने लगी. वहां मेरी दो सहेलियां भी बनीं. आपस में हम घंटों बातें करते बस्ती के बारे में चर्चा करते, फिर हम तीनों ने मिल कर हर गलत चीज़ के खिलाफ़ बोलना शुरू किया. हमारी पुलिस से भी खूब लड़ाई होती थी. पुलिस के आने पर हम बस्ती के लोगों को इकट्ठा कर लेते थे. एक बार कड़कड़डूमा में लगनेवाले शुक्रवार बाज़ार को उजाड़ दिया गया. तब हमने मिल कर बस्ती की महिलाओं के साथ सरकार के खिलाफ़ नारे लगाये और एक हफ़्ते तक धरने पर भी बैठे. उसका केस आज तक भी चल रहा है. अब सोचती हूं कि सरकार हमारी बस्ती भी उजाड़ने को बोल रही है. तो हम और हमारे जैसे लोग कहां जायेंगे. सरकार तो अपना फ़ायदा सोचती है. बहुत गुस्सा आता है. आखिर हम अपनी बस्ती, अपनी छत उन्हें क्यों दे दें? सब झूठे वादे करते हैं. सौ रुपये का फारम भरवा कर हमें बेवकूफ़ बनाया जा रहा है. इसलिए हमने तो फारम भी नहीं भरा. ये तो सरकार का पैसा बनाने का ज़रिया है. वोट मांगने आते हैं और बाद में भूल जाते हैं. हमने तो सोच लिया है, अपनी बस्ती उन्हें नहीं लेने देंगे.

जानकी

और बदहाल बना रही है मंदी

पूरे संसार में आर्थिक मंदी का दौर चल रहा है. बड़ी–बड़ी कंपनियों का दिवालिया होना बैंकों का दिवालिया होना, जैसे आम बात हो गयी है. आम जनता का पैसा डूब गया है. वहीं मेहनतकश जनता का भी बुरा हाल है. उन्हें संसार की आर्थिक मंदी क्या चीज़ है. इससे उन्हें कोई वास्ता नहीं लेकिन अपने जीवन में आनेवाली मंदी को वो आये दिन झेलते हैं. जींस पर रिंकल, बनाना, धागा कटिंग करना, प्रेस व पैकिंग, सिलाई इत्यादि करनेवाले मज़दूरों से बात कर हमने उनके व उनके परिजनों पर पड़नेवाले असर को जानने की कोशिश की. इसी अनुभव को इस अंक के साथ हम आप तक पहुंचा रहे हैं.

राजधानी दिल्ली के सीलमपुर मेट्रो स्टेशन के पीछे नाले पर बनी पुलिया को पार करते ही गांधीनगर क्षेत्र शुरू होता है. विभिन्न क्षेत्रों की पतली–पतली गलियों में बनी तीन से चार मंज़िला मकानों को बाहर से देख कर पता ही नहीं चलता कि लाखों मज़दूर इनके अंदर समाये हुए अपनी मेहनत से मालिक को मुनाफ़ा दे रहे हैं.

अजीत नगर में स्थित एक कंपनी में हम अपनी परिचित के दीदी से मिलने के लिए गये. वहां जाकर हमने जाना कि शर्ट की सिलाई करनेवाले मज़दूरों को पीस रेट पर रखा गया है. फ़िलहाल काम मंदा चल रहा है तो कई मज़दूर गांव चले गये हैं. जेब लगाने पर पीस पर अलग–अलग रेट दिया जाता है. फिर बटन लगते हैं और फिर उसे सजाया जाता है. सिलाई और डेकोरेशन का काम पूरा होने के बाद कपड़ों की प्रेस की जाती है. प्रेस करने वाला व्यक्ति ही कागज़ की पट्टी, टैग, पन्नी इत्यादि का काम करके उसकी डिब्बे में पैकिंग करता है. ये सारा काम करने के बाद वह एक पीस पर दो से ढाई रुपये कमाता है. पूछने पर हमें पता लगा कि एक समय तो एक दिन में दो–दो सौ पीस मिल जाते हैं, लेकिन यह काम अब महंगा चल रहा है तो केवल सत्तर–सौ तक ही पीस मिल पाते हैं.

ये कंपनी के अंदर का हाल था. बाहर निकल कर हमने घरों में महिलाओं से बात की. वहां पर हम मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) से आयी हुईं फूलकुमारी दीदी से मिले. उस समय वे अपनी बेटी राखी के साथ जींस पर रिंकल बनाने (सिलवटों पर केमिकल लगाने) का काम कर रही थीं. पति डाइ का काम करते हैं. काम मंदा होने से वे अपने गांव गये थे. दीदी और उनकी बिटिया राखी जींस को एक मोटे पाइप में लगा कर उसमें सिलवटें बना कर ब्रश से केमिकल लगा रही थीं. वह केमिकल पत्थर को गला रहा था. हमने उनसे केमिकल से हाथों पर पड़नेवाले असर के बारे में पूछा तो पता चला कि वह केमिकल इतना तेज़ होता है कि कपड़ों तक को गला देता है और हाथ बुरी तरह जल जाते हैं यहां तक कि कुछ समय बाद वे सिकुड़ जाते हैं. इतना ही नहीं, सिलवटें बनाते बनाते हाथों में तीन–चार दिन के अंदर तो सुन्नपन आ जाता है. वह भी इतना कि ज़मीन पर पड़ी कोई चीज़ उठानी हो तो काफी देर तक मशक्कत करनी पड़ती है. वे कहती हैं–बहुत मुश्किल होता है तब.

दीदी के हाथ बेहद पतले हो चुके हैं. दो वक्त की रोटी खाने के लिए मज़दूर अपनी ज़िंदगी, अपने शरीर को पूरी तरह खतरे में डाल देते हैं, उस पर उन्हें सिर्फ 50 पैसे मिलते हैं. राखी ने बताया कि पहले पांच सौ तक भी पीस मिल जाते थे, रेट भी ठीक था, पर अब तो सौ पीस भी नहीं मिलते, उस पर भी पचास पैसे से चालीस पैसे पीस रेट करने की बात आ रही है.

इसके बाद हम जींस की धागा कटिंग कर रही रंजू दीदी से मिले. उन्हें दिल्ली में मुज़फ़्फ़रपुर से आये 16 साल हो चुके हैं. एक छोटा सा कमरा टांड न होने की वजह से तारों की मदद से लटकाये हुए गद्दे को टांड बनाया हुआ था. अस्त–व्यस्त सामान को भी एक छोटे कमरे में व्यवस्थित किया जा सकता था, किया गया था.

दीदी और उनके बच्चे भी जींस की धागा कटिंग में लगे हुए थे. उनका सबसे बड़ा बेटा दसवीं में आया था. पर किताबें पैसों के अभाव में पूरी जमा नहीं कर पाया था. रंजू दीदी ने बताया कि पहले से अब पीस काफी कम हुआ है और एक पीस की कटिंग पर मात्र चालीस पैसे मिलते हैं. सोलह साल पहले जब दीदी यहां आयीं थीं तो मात्र तीन सौ रुपये में किराये पर रहती थीं. आज यह बढ़ कर एक हज़ार हो चुका है. आमदनी न होने पर काफी दिक्कत होती है.

जब दीदी से हमने सवाल किया कि विश्व भर में आर्थिक मंदी चल रही है, विदेश जानेवाला माल रुक गया है, तो इसका आप पर क्या असर है, उनका सीधा जवाब था कि ये मंदी तो हर साल इन महीनों आती ही है और काम मंदा ही रहता है. सच ही तो है कि मज़दूरों के जीवन में तो ये मंदी ज़िंदगी भर बनी रहती है. साल के कई महीने तो इस मंदी में ही गुजरते हैं. किंतु इस वैश्विक मंदी के आने से प्रभाव व्यापक हो जायेगा. पहले जहां दो महीने मंदी का असर रहता था, अब वह पूरे साल तक लंबा खिंच सकता है.

कई मज़दूरों की छंटनियां हो चुकी हैं. महंगाई लगातार बढ़ रही है, बेरोजगारी, बदहाली बढ़ रही है, मेहनतकश जनता परेशान हो रही है. वैश्विक आर्थिक मंदी आम जनता के जीवनयापन तक व्यापक असर छोड़ रही है.

शोपियन में भारतीय सैनिकों द्वारा दो लड़कियों का कत्ल

कश्मीर में भारतीय सैनिकों द्वारा आम आदमियों पर हो रहा अत्याचार फिर से पूरे देश के सामने उजागर हुआ. 29 मई को कश्मीर के शोपियन ज़िले में दो निर्दोष महिलाओं नीलोफर (22) और उसकी ननद आयशा (17) का भारतीय सैनिकों ने बलात्कार किया और बाद में उन दोनों की हत्या कर डाली. जैसे ही भारतीय सैनिकों द्वारा किया गया यह दुष्कर्म कश्मीर की आम जनता के सामने आया, कश्मीर में चल रहा आंदोलन और भी पुख्ता होता नज़र आया. 29 मई सुबह पांच बजे, नीलोफर और आयशा अपने घर के बगीचे में निकली थीं, घरवालों ने उन दोनों को निकलते देखा था. दिन ढल गया लेकिन वे वापस नहीं आयीं. उन दोनों के घरवाले जब थाने में रिपोर्ट दर्ज़ कराने गये, तो उनकी रिपोर्ट दर्ज़ नहीं की गयी. अगले ही दिन यानी तीस मई को उन दोनों लड़कियों की लाशें एक नहर के किनारे पायी गयी. उन दोनों के शरीर पर बुरी तरह खरोंचों के निशान थे. पुलिस ने इस मामले पर लीपापोती करते हुए कहा कि इन दोनों की मौत नहर में डूबने से हुई. पुलिस के इस झूठे बयान से पूरे शोपियनवासी भड़क उठे और यह आग धीरे–धीरे पूरे कश्मीर में फैल गयी. भारतीय सैनिकों द्वारा किया गया दुष्कर्म कोई नयी बात नहीं है. जनवरी, 1989 से लेकर अप्रैल, 2009 तक 9864 महिलाएं भारतीय सैनिकों द्वारा बलात्कार की शिकार हुईं (गैर सरकारी आंकड़े के अनुसार). इस घटना में जम्मू–कश्मीर के मुख्यमंत्री उमर अबदुल्ला का बयान काफी निंदनीय रहा. जैसे ही उन्हें इस घटना की जानकारी मिली, उन्होंने कह दिया प्राथमिक जांच पड़ताल से पता चलता है कि इन दोनों लड़कियों का न ही बलात्कार हुआ है और न ही कत्ल हुआ है. यह बात पूरे कश्मीर में फैलते ही हज़ारों की संख्या में पुरुष, स्कूली छात्राएं सड़कों पर उतर आये और दुष्कर्मियों को जल्द से जल्द सज़ा देने की मांग की. परिस्थिति बेकाबू होते देखते ही सरकार की तरफ़ से फिर से लाशों का पोस्टमार्टम करने का आदेश दिया गया और अंततः सरकार यह स्वीकार करने पर बाध्य हुई कि दोनों लड़कियां बलात्कार का शिकार हुईं थीं तथा उन्हें कत्ल कर दिया गया. नीलोफर तथा आयशा के घरवाले अपने दुख–दर्द को अपना कर इस आंदोलन के साथ जुड़ गये और दुष्कर्मियों को जल्द से जल्द सज़ा देने की मांग करते हुए भूख हड़ताल पर बैठ गये. यह भी मांग उठायी गयी कि कश्मीर में चल रहे भारतीय सैनिकों द्वारा अत्याचार को जल्द से जल्द बंद किया जाये. इस घटना से कश्मीर में पूरे स्कूल, कालेज, सबके सब ठप पड़ गये. कश्मीर का आंदोलन धीरे–धीरे और भी बुलंद होता नज़र आ रहा है. इस घटना ने आक्रोश को और बढ़ा दिया है. यह आंदोलन तब तक चलेगा जब तक कश्मीरी अवाम को आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं मिलेगा.

सुचित्रा.

हमारी बस्ती

दिल्ली, मेरी दिली के विकास की जब बात होती है तो आंखों के समने निर्माणाधीन फ़्लाइओवर्स, मेट्रो के लिए जगह–जगह खुदी हुई सड़कें, बड़े–बड़े क्रेनों के साथ पीली हेलमेट, चमकीली जैकेट पहने हज़ारों मज़दूर घूमने लगते हैं. पहले से ही ट्रैफ़िक से व्यस्त सड़कों पर कहीं मेट्रो का काम चालू है, कहीं सीवर की खुदाई चल रही है तो कहीं दिल्ली जल बोर्ड के नाम से आधा और व्यस्त कर दिया जाता है. विकास की ओर अग्रसर होती दिल्ली में इसके बाद भी पानी, बिजली, सीवर, ट्रैफ़िक, रोजगार की किल्लत कम होने के बजाय बढ़ती जा रही है. तथाकथित विकास का खोखला सच हमारे सामने तब आ जाता है जब दिल्ली को संवारने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनेवालों से हमारा सामना होता है. विकास करती दिल्ली और कामगारों की दिल्ली में बहुत बड़ा फ़र्क है. हमारी बस्ती कालम में आज हम ऐसे ही एक इलाके **सुंदरनगर** से आपको परिचित करा रहे हैं, जो इस झूठे विकास की एक झलक मात्र है.

पूर्वी दिल्ली में स्थित सुंदरनगरी शहर के व्यस्त इलाकों में गिना जाता है. एक तरह से यह दिल्ली गाज़ियाबाद(यूपी) बार्डर भी है. निम्नवर्गीय हिंदू मुसलिम बहुल आबादी वाले इस इलाके में पक्के पच्चीस गजी जैसे प्लाटों को छोड़ कर तीन हिस्सों में बंटी तीन–साढ़े तीन हज़ार के लगभग झुग्गियां हैं. जिनकी जनसंख्या तकरीबन 12–15 हज़ार होगी. और यहां के लोग छोटे–छोटे रोजगार–धंधों, मज़दूरी इत्यादि करके गुजर–बसर करते हैं. इनमें रहनेवाली ज्यादातर महिलाएं भी आमदनी के लिए कुछ न कुछ मज़दूरी करती हुई मिलेंगी. कोई पीसरेट पर कढ़ाई कर रही है तो कुछ धागा कटिंग कर रही हैं. कोई बिंदी चिपका रही है तो कोई धागा पिरो रही है. कोई अगरबत्ती बना रही है तो कोई चादर में गांठें लगा रही है. एक पूरी तो झुग्गी में तो पुरानी चप्पलों को उधेड़ कर साफ़ करके रिपेयरिंग करने का काम होता है. यह झुग्गी अपने इसी हुनर के लिए जानी जाती है.

जब हमने इन झुग्गियों में गुजर–बसर कर रहे लोगों से इनकी समस्याओं के बारे में जानना चाहा तो महिलाएं गुस्से में उबल पड़ीं. इनका गुस्सा सरकार पर था. वोट बटोरू पार्टियों पर था. इन्होंने कहा कि जब वोट लेना होता है तो कैसे निगम पार्षद, विधायक या और भी बड़े–बड़े नेता चक्कर लगाते हैं. बिजली, पानी राशन, रोजगार वगैरह की सुविधाएं करायेंगे का वादा करते हैं, लेकिन जब कुरसी मिल जाती है तो एक बार भी झांकने नहीं आते हैं कि जनता मर गयी कि जिंदा है. गलियों की बजबजाती नालियों और कूड़े के ढेर की ओर संकेत करके कहा कि इसकी सफाई के लिए न जाने कितने अप्लीकेशन लगाये जा चुके हैं. एक बार तो सब मिल कर जुलूस भी निकाले थे, लेकिन किसी ने नहीं सुनी. यहां की सबसे बड़ी समस्या शौचालयों की है. शौचालयों की स्थिति बद से बदतर है. जर्जर हो चुके शौचालयों की मरम्मत तक नहीं है. सफाई पानी की व्यवस्था तक नहीं है. लोग अपने घरों से ही पानी ले जाते हैं. बच्चों का पैसा नहीं लगता लेकिन बड़े अगर एक से ज्यादा बार जाते हैं तो उन्हें एक रुपया देना पड़ता है. एफ़एल, ई60 की झुग्गी का शौचालय तो खराब ही है. इधर के लोग थोड़ी दूर स्थित एक दूसरे शौचालय का इस्तेमाल करते हैं.

राशन की दुकानों में भी शिकायतें ही सुनने को मिलीं. कोई नियम नहीं है, दुकान खुलने का. लोगों को एक दूसरे के मुंह से सुन कर पता चलता है कि राशन, तेल बंट रहा है. राशन वाले की अपनी दादागीरी है. जिसके नाम का राशन कार्ड है, वही जायेगा. एक महिला ने अपना पैर दिखाते हुए कहा कि वह चल नही पा रही है. घर का मर्द काम पर जाता है. वह कैसे जाये राशन लेने? किसी और को राशन नहीं दे रहा है. राशन ब्लैक भी बहुत होता है. कुछ बोलो तो बड़े भद्दे तरीके से पेश आता है. समस्याएं इसके अलावा भी हैं. इन समस्याओं को जड़ से उखाड़ कर फेंकने की नीयत शासकवर्ग की नहीं है. और न ही यहां कई सालों से काम कर रहे एनजीओ की. कई एनजीओज यहां काम कर रहे हैं जो सरकारी फ़ंड या विदेशी फ़ंड लेते हैं. कोई स्वास्थ्य पर काम कर रहा है तो कोई वोकेशनल ट्रेनिंग पर तो कहीं सूचना के अधिकार बचत योजना, पर्यावरण आदि–आदि. लेकिन ज़िंदा रहने की मूलभूत सुविधाओं के बारे में कोई बात नहीं करता. समस्याओं को हल करने के कारगर तरीकों पर कोई बात नहीं करता.

टूटती सांकलें टीम.

लालगढ़ से एक जांच रिपोर्ट

पश्चिम बंगाल का लालगढ़ क्षेत्र इन दिनों सुर्खियों में है. मीडिया रिपोर्टें ऐसे दिखा रही हैं, जैसे वहां घटी घटनाएं अचानक पिछले कुछ दिनों में हुई हों, जैसे उनका कोई इतिहास नहीं रहा हो, यह इतिहास तो एक कड़े संघर्ष का इतिहास है और इसी के बारे में और जानने के लिए दिल्ली के जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के छात्रों और पत्रकारों की एक नौ सदस्यीय टीम जून में लालगढ़ गयी.

बंगाल के मेदिनीपुर जिले में स्थित लालगढ़ एक बहुत ही पिछड़ा हुआ इलाका है. 30 वर्ष के *वामपंथी* शासन ने यहां के लोगों के लिए, जिनमें आदिवासियों की तादाद बहुत बड़ी है, कुछ भी सुधार नहीं किया है. यहां के गांवों में जीविका के नाम पर कुछ भी नहीं है. खेती बहुत सीमित चीज़ों की हो सकती है और वह भी बरसात पर निर्भर है. सरकार ने सिंचाई की, यहां तक कि पीने के पानी की भी कोई सुविधा नहीं की. गांववालों के लिए कोई ढंग का अस्पताल नहीं है और बीमारी के समय उन्हें शहर जाना पड़ता है. यहां तक कि गरीबी और भुखमरी के कारण यहां कुछ मौतें भी हो चुकी हैं. ऐसी शर्मनाक स्थिति के बावजूद आज वहां की सरकार अपनी गलतियां मानने के बजाय संघर्ष कर रहे लोगों पर गोलियां चला रही है. उन्हें आतंकवादी, अराजकतावादी कह कर उन पर और दमन कर रही है.

हमारी टीम जून सात से दस तक लालगढ़ में थी, जिसमें हम 25 गांवों में जाकर वहां के लोगों से बात कर पाये. इसी से हम वहां चल रहे आंदोलन को उसके इतिहास और कारणों को समझ पाये.

लालगढ़ इलाके में नवंबर 2008 से गांववालों पर अत्यधिक पुलिसिया दमन चल रहा है, बल्कि यह दमन पिछले दस सालों से चला आ रहा है. इस बार पास के सालबनी में दो नवंबर को मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य के काफ़िले पर हुए हमले को बहाना बना कर पुलिस ने आस–पास के गांववालों पर हमला बोल दिया, मुख्यमंत्री बड़े पूंजीपति ज़िंदल के लिए बनाये गये पांच हज़ार करोड़ के सेज़ यानी विशेष आर्थिक क्षेत्र के शिलान्यास से लौट रहे थे. पुलिस ने इसके बाद ज़ुल्मों की मानो झड़ी लगा दी. वे लोगों के घरों में देर रात घुस कर उन्हें बुरी तरह पीटती, जांच के नाम पर अनाज और घर का समान बिखेर देती. माओवादी कह कर पुलिस लोगों को उठा ले जाती और उन पर अत्याचार करती. जिन गांवों में हम गये, वहां सभी ने बेझिझक पुलिसिया अत्याचारों की पुष्टि की. हर बार चुनाव से पहले तो सत्ताधारी पार्टी सीपीएम के लोग और पुलिस हर गांव से 20–40 लोगों को माओवादी कह कर उठा ले जाती. ताकि चुनाव में उनका विरोध करनेवाला कोई बचे नहीं.

लालगढ़ के आंदोलन में महिलाएं सबसे आगे रहीं. वहां दर्जनों महिलाओं से बात की. उन सभी ने अपने अनुभवों के बारे में बताया. उन पर पुलिस और सीपीएम के लोगों द्वारा बहुत ज़ुल्म किया जाता था. पुलिस तलाशी के नाम पर महिलाओं के कपड़े उतरवा लेती थी. स्कूल जाती लड़कियों को भी पुलिस द्वारा इसी तरह अपमानित किया जाता. उनके कपड़ों की भी चेकिंग की जाती. शौच के लिए जाने में लालगढ़ में महिलाओं को डर लगने लगा था, क्योंकि घर से निकलने के बाद कोई भी महिला सुरक्षित नहीं थी. उसके साथ पुलिस बहुत बुरा व्यवहार करती थी. इस तरह का व्यवहार करनेवाली पुलिस, पार्टी और सेना के लिए लोगों–खास कर औरतों के मन में बहुत अधिक नफ़रत, गुस्सा और घृणा थी. बुद्धदेव भट्टाचार्य पर सालबनी में हमले के बाद 6 नवंबर पुलिस ने छोटोपेलिया गांव की कई महिलाओं को बुरी तरह पीटा. इनमें से एक चिंतामणि मुर्मु की आंख फूट गयी. महिलाओं के साथ किये जा रहे इन अत्याचारों ने गांववालों के सब्र का बांध तोड़ दिया. हज़ारों लोग अत्याचारों के विरुद्ध उठ खड़े हुए.

इसके बाद उन्होंने अपने आप को संगठित करना शुरू किया. सात नवंबर को हज़ारों आदिवासियों ने सड़क पर आकर अपना प्रतिरोध ज़ाहिर किया. इस रैली के बाद उन्होंने अपना एक संगठन बनाया, जिसका नाम रखा गया–पुलिस संत्रास विरुद्ध जनसाधारणेर कमेटी (पुलिस के अत्याचार के खिलाफ़ आम लोगों की कमेटी). 95 गांवों से शुरू हुई कमेटी अंत तक लगभग 1200 गांवों तक फैल गयी. इस कमेटी में सबसे नीचे शाखा कमेटी है, उसके ऊपर ग्राम कमेटी, फिर अंचल कमेटी और उसके ऊपर ज़िला कमेटी. सबसे ऊपर है केंद्रीय कमेटी. इसमें खास बात यह है कि प्रत्येक ग्राम कमेटी में कुल सदस्यों में से कम से कम आधी महिलाएं होती हैं. कमेटी में कम से कम पांच महिलाएं एवं पांच पुरुष होते हैं. लोगों ने यह तय किया कि तमाम फ़ैसले जनसभा में ही लिये जायेंगे. यह सब जनसाधारण कमेटी के जनवादी ढांचे और मूल्यों को दिखाता है. इस कमेटी के साथ हर गांव में कमेटी की एक महिला शाखा भी बनी. पिछले आठ महीनों से यह कमेटी जनता के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ रही है. इसने पुलिस के बहिष्कार का निर्णय लिया और उसे सफलतापूर्वक लागू भी किया. गांववालों ने रास्ते बंद कर पुलिस और अर्धसैनिक बलों को इस इलाके में प्रवेश बंद कर दिया. उन्होंने यह साफ़ कर दिया कि अब वे किसी भी तरह के राजकीय दमन और अत्याचार को अब बरदाश्त नहीं करेंगे. यह कमेटी आदिवासियों के अपने मूल अधिकारों और जल–जंगल–जमीन की लड़ाई का नेतृत्व कर रही है.

जनता पर हो रहे अत्याचारों से लड़ने के साथ ही साथ कमेटी ने इन आठ महीनों में जनता की बदहाली को दूर करने और इलाके के विकास के लिए अनेक काम शुरू किये. कमेटी ने जून के पहले सप्ताह तक कम से कम बीस किलोमीटर सड़क बनवायी थी. उन्होंने तीन नये ट्यूबवेल लगवाये थे और कई इलाकों में पीने के पानी के लिए और सिंचाई के लिए और ट्यूबवेल लगाने और पुराने की मरम्मत की योजना है. इसके अलावा कमेटी कांटापहाड़ी समेत तीन गांवों में हेल्थ सेंटर चला रही है, जिनमें रोज़ लगभग 200–300 मरीज इलाज कराने आते हैं. इसके लिए कोलकाता से डाक्टर आते हैं. इन सभी विकासात्मक कामों में जनता सीधे भागीदारी करती है. वह खुद तय करती है कि कहां सड़क बनानी है, कहां क्या विकास का कार्य करना है. उसे पूरा करने के लिए वह श्रमदान भी देती है. कुछ गांवों में कमेटी ने भूमिहीन जनता में भूमि वितरण भी शुरू किया है. जिन्हें ज़मीन नहीं थी उन्हें शुरू में एक बीघा ज़मीन दी जा रही थी. ये सारे काम इलाके में पहली बार हो रहे थे. सरकार ने कभी इस इलाके में कोई विकास का काम नहीं किया.

यह बात भी याद रखना ज़रूरी है कि गांववालों पर आतंक मचानेवाली पुलिस अकेले नहीं थी. सत्ताधारी और कथित वामपंथी पार्टी सीपीएम के गुंडे, जिन्हें गांववाले हरमादवाहिनी के नाम से जानते हैं, भी इसी तरह का आतंक मचाते थे, यह गुंडे गांव में अपने विरोधियों पर हमला करते और पुलिस को गांववालों के बारे में जानकारी देने का काम करते थे. कई बार तो पुलिस की जीप में सवार होकर वे गांव में आते और लोगों को मारते या उनका घर तोड़ देते. ज़ाहिर है लोगों का गुस्सा पुलिस के साथ–साथ सीपीएम पर भी था. कई जगहों पर गुस्साये लोगों ने पुलिस के कैंप या सीपीएम के आफ़िस भी तोड़ डाले.

लालगढ़ के आंदोलन में महिलाओं की बहुत बड़ी भागीदारी हमने देखी. पुलिस और सीपीएम के गुंडों के अत्याचार के खिलाफ उनका गुसा और एक बदले शोषणहीन समाज के सपने ने महिलाओं को एक साथ लड़ने की प्रेरणा दी है. हमने देखा कि उन गांवों में, जहां महिला कमेटी काम कर रही है, वहां की औरतें बहुत निडर तरीके से अपनी बात रखती थीं. उनमें कोई डर नहीं था और वे हर तरह के संघर्ष के लिए तैयार थीं. सबका कहना था कि अगर पुलिस ने वापस गांवों में कदम रखने की कोशिश की तो वे किसी भी हालत में उन्हें घुसने नहीं देंगी. उनका आक्रोश साफ़ ज़ाहिर होता था. महिला कमेटी ने इलाके में दारूबंदी लगा रखी थी.

लालगढ़ में जाकर हमने देखा कि यह आंदोलन पूरी तरह वहां के लोगों खास कर आदिवासियों का है. मीडिया और कुछ और शक्तियां यह दिखाने की कोशिश कर रही हैं कि भोले–भाले आदिवासियों का इस्तेमाल किया जा रहा है. लेकिन यह बेबुनियाद है. हमने जो देखा उससे यह ज़ाहिर होता है कि वहां के लोग किसी के बहकावे में आकर इस लड़ाई में शामिल नहीं हुए हैं. यह लड़ाई उन्होंने खुद शुरू की है और वे खुद इसे लड़ रहे हैं. हमने ऐसे कई गांव देखे, जहां चार–पांच गांवों के हज़ारों लोग जमा होकर मीटिंग करते और रास्ता काटने, अवरोध करने और दूसरी बातों पर विचार करते, पहले की तय की गयी बातों को लागू करते. सात जून को कमेटी द्वारा बुलायी गयी एक मीटिंग में बारह हज़ार आदिवासी जमा हुए थे. सभी अपने पारंपरिक हथियारों से लैस थे. वे उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं थे, क्योंकि वे उन्हें अपने इतिहास और परंपरा का हिस्सा मानते हैं.

सरकार इस प्रतिरोध से डर चुकी है. इसलिए इसे आतंकवादी, अराजकतावादी बता कर इस आंदोलन का दमन करने में लग गयी है. हज़ारों की तादाद में पुलिस और अर्धसैनिक बलों को लालगढ़ और आसपास के इलाकों में भेजा जा रहा है, ताकि इस आंदोलन को गोलियों के बल पर खत्म कर दिया जाये. जब सदियों से शोषित लोग अत्याचार के खिलाफ़ उठ खड़े होते हैं और अपने अस्त्रों से सरकार और राज्य का मुकाबला करके अपनी जान देने को भी तैयार हो जाते हैं तो सरकार इसका जवाब दमन से देती है, जल–जंगल–ज़मीन, विकास और जनवाद से जुड़े मुद्दों को सरकार नकार देती है और अपनी गलतियां मानने के बजाय उनको उत्पीड़ित कर रही है. पर लालगढ़ के लोगों ने ऐसे में प्रतिरोध की एक अमिट मिसाल कायम की है.

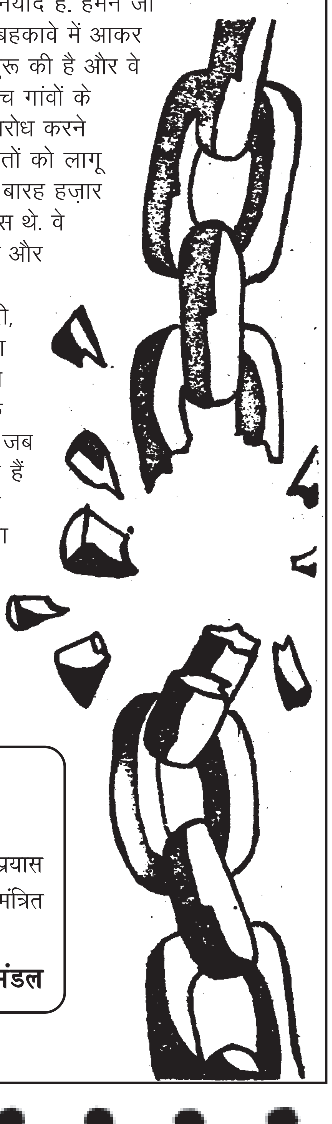

पाठकों से

'टूटती सांकले' के सभी पाठकों की प्रतिक्रियायें एवं सुझाव आमंत्रित है। 'टूटती सांकले' का यह विशेषांक संघर्षों की श्रृंखला को याद करते हुए उसे जारी रखने का प्रयास करेगा। 'टूटती सांकले' समाज में महिलाओं एवं मेहनतकश जनता पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ लड़ने व उनसे एकजुटता बनाने के लिए प्रयत्नशील है। अतः सहर्ष आमंत्रित है आपके सुझाव, रचनायें, अपने क्षेत्र में घटने वाली महिला सम्बन्धी घटनाएें, संघर्ष की रिपोर्ट आदि।

सम्पादक मंडल

सम्पर्क सूत्र : **'टूटती सांकले'** 7/115, सेक्टर - 2, राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद, जिला गाजियाबाद - 201005 फोन : 9968701121